❑ आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री,

कालिदास की विरह-व्यंजना

'कालिदास की विरह-व्यंजना', इस शीर्षक का थोड़ा स्पष्टीकरण अपेक्षित है। इस शीर्षक से एक अर्थ यह ध्वनित होता है कि अपने साहित्य के पात्रों के द्वारा कालिदास ने विरह का जो रूप अंकित किया है उसकी विवेचना इस लेख में की जायेगी। इसका एक अर्थ यह भी हो सकता है कि स्वयं कालिदास ने विरह का जो अनुभव किया है उसकी व्यंजना करने का दुष्प्रयास इस लेख का अभीष्ट है। यह दूसरा अर्थ कुछ अटपटा लगता है लेकिन मेरा विश्वास है कि ये दोनों अर्थ परस्पर पूरक हैं।

कालिदास ने विरह का जो मार्मिक तीव्र अनुभव किया होगा वही अनुभव भिन्न-भिन्न पात्रों के माध्यम से भिन्न-भिन्न कृतियों में भिन्न-भिन्न स्थितियों में प्रतिफलित हुआ होगा, यह अनुमान असंगत नहीं कहा जा सकता। अपनी इस मान्यता के समर्थन में हिन्दी के विदग्ध कवि नागार्जुन की एक मर्मस्पर्शी कविता के कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूँ—

कालिदास, सच-सच बतलाना,
इन्दुमती के मृत्युशोक से,
अज रोया या तुम रोये थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना।
रति का क्रन्दन सुन आँसू से,
तुमने ही तो दृग धोये थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना,
रति रोयी या तुम रोये थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना,
पर-पीड़ा से पूर-पूर हो,
थक-थक कर औ चूर-चूर हो,
अमल-धवल गिरि के शिखरों पर,
प्रियवर, तुम कब तक सोये थे?
रोया यक्ष कि तुम रोये थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना।[1]

यह कविता यह ध्वनित कर रही है कि अज या रति या यक्ष के माध्यम से जिस विरह की व्यंजना कालिदास ने की है, वह उनके अपने अन्तर के विरह की अनुभूत वेदना थी। कवि की अपनी भोगी हुई विरहपीड़ा की प्रत्यक्षता और विरहपीड़ित स्वजनों की पीड़ा की साक्षिता सम्मिलित रूप से उसका वह अनुभव-कोष है जिसके आधार पर वह अपने पात्रों की विरह वेदना का चित्रण करता है। अपने अनुभवों को वाणी देने के लिए, तल्लीनता के साथ-साथ जिस तटस्थता की कुछ दूरी की आवश्यकता होती है उसकी सिद्धि के लिए कालिदास ने इन पात्रों के माध्यम से अपने विरहानुभव को व्यंजित किया था। अत: कालिदास के पात्रों की विरहव्यंजना में स्वयं कालिदास की विरहानुभूति और विरह सम्बन्धी तात्त्विक दृष्टि समाहित है, इस मान्यता का औचित्य स्वीकार्य है।

इस विवेचन को आगे बढ़ाने के पहले विरह सम्बन्धी कालिदास की तात्त्विक दृष्टि पर थोड़ा विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। कालिदास की विरह सम्बन्धी धारणा प्रेम सम्बन्धी उनकी मान्यता पर अवलम्बित है। प्रेम अपने शिथिल अर्थ में विशेष कर कविता के शृंगारी सन्दर्भ में मनोनुकूल नर या नारी के प्रति मन की प्रवणता को व्यक्त करता है। प्रेम के और व्यापक तथा गंभीर अर्थ भी होते हैं किन्तु उपर्युक्त अर्थ में नर-नारी की कामासक्ति उसमें अनायास अन्तर्निहित रहती है। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि कालिदास की दृढ़ मान्यता थी कि कामासक्ति एक सतही स्थिति है। केवल शारीरिक रूप का पिंड आकर्षण मनुष्य के हृदय में जिस उत्कंठा को जन्म देता है वह भोगपरायण है और उसके द्वारा उस गंभीर अनुभूति का उदय नहीं होता जिसे प्रेम कहा जा सकता है। अप्राप्त प्रिय की प्राप्ति होने के बाद अगर उसके प्रति आकर्षण शिथिल हो जाय, उसमें सातत्य न बना रहे तो यह मानना पड़ेगा वह प्रेम न होकर काम ही था।

कालिदास प्रेम में शरीर के मिलन को नकारते तो नहीं किन्तु उसी तक सीमित नहीं रहते। कालिदास नर-नारी के मिलन को बहुत सूक्ष्मता से, स्पष्टता से कलात्मक रूप में अंकित करते हैं। ऐसा करते समय किसी भी प्रकार की कुंठा का वे बोध नहीं करते। फिर भी कालिदास की दृष्टि में शरीर के धरातल का अतिक्रमण कर जब प्रेम 'भावनिबन्धना रति' की भूमिका पर अधिरोहण करता है, तभी सार्थक होता है। 'भावनिबन्धना रति' शब्द कालिदास का ही है। इन्दुमती के प्रति अज ने अपने प्रेम की अभिव्यक्ति इसी शब्द के माध्यम से की थी।[2] जब तक ऐसा नहीं होता तब तक यौवन और सौन्दर्य दोनों वास्तविक प्रेम को उद्दीप्त करने में समर्थ नहीं होते। यौवन तो जीवन के एक काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष की संज्ञा है, जिसमें विषय भोग के प्रति मन उन्मुख होता है। 'यौवने विषयैषिणाम्'[3], यह उक्ति कालिदास ने रघुवंश के राजाओं के वर्णन के प्रसंग में स्वयं कही है। अर्थात् वे स्वीकार करते थे कि यौवनकाल में विषय की एषणा स्वाभाविक होती है। इस एषणा को रूप-सौन्दर्य और उकसा देता है। यह एषणा सौन्दर्य के प्रति यह आकर्षण कालिदास की दृष्टि में तब तक प्रेम संज्ञा प्राप्त करने में समर्थ नहीं, जब तक मंगलमय न हो। यह स्मरणीय है कि यौवन मूलत: विषयगत है, सौन्दर्य विषय में भी होता है और विषयी की दृष्टि में भी किन्तु प्रेम तो भाव में ही बल्कि भावविशेष ही है। विषयैषणा या भोगलालसा की तृप्ति तो पण्यस्त्रियों या पुरुषों के द्वारा भी की जा सकती है। ऐसा करने वालों के प्रति कालिदास के मन में सम्मान नहीं था। मेघदूत में विदिशा के निकट 'नीच' नामक पहाड़ी की गुफाओं में इस प्रकार की कामकेलि का संकेत कालिदास ने किया था।[4] मुझे लगता है कि यह 'नीच' नाम साभिप्राय है जो आधार तक ही सीमित न होकर आधेय को भी अपनी लपेट में ले लेता है। अन्त:पुरों में विलासी राजाओं की प्रेमक्रीड़ा का चित्रण भी कालिदास को करना पड़ा था। अपने आश्रयदाताओं की रुचियों को ध्यान में रखना राजाश्रित कवियों की विवशता है। कालिदास भी उससे मुक्त नहीं थे। 'मालविकाग्निमित्रम्' नामक अपने नाटक में कालिदास ने अग्निमित्र की प्रणयलालसा का चित्रण किया है जो धारिणी एवं इरावती जैसी रानियों के रहते हुए मालविका के सौन्दर्य से आकृष्ट होता है। विदूषक की चतुराई और परिस्थितियों की अनुकूलता से वह उसे पा भी लेता है, किन्तु इस नाटक में प्रेम की व्यंजना सतही ही है, उदात्त एवं ऊर्जस्वित नहीं।

जिसकी सिद्धि के लिए कोई बड़ी चीज दाँव पर नहीं लगायी जाये, वह वृत्ति आन्तरिक है, गंभीर है, मंगलमयी है, कालिदास संभवत: इसे नहीं मानते थे। उनकी धारणा थी कि सृष्टिरचना की इच्छा से भगवान् शिव ने अपने आपको स्त्रीपुरुष इन दो मूर्तियों में विभक्त कर दिया। इन स्त्री-पुरुषों में रूपासक्ति के कारण आकर्षण हो यह स्वाभाविक है किन्तु यदि यह आसक्ति केवल देहपरक है, उपभोगपरक है तो अन्धी कामासक्ति है जो उपभोग के बाद शिथिल हो जा सकती है और अपने स्वाभाविक परिणाम नवीन सृष्टि से कतरा सकती है या उसे अवांछित... दु:ख-भाजन मान सकती है। इसीलिए वे प्रतिपादित करते हैं कि जब कामासक्ति को तपस्या से भस्म कर दिया जाता है तभी शुद्ध प्रेम की दीप्ति प्रकट होती है। कुमारसंभवम् एवं अभिज्ञानशाकुन्तलम् अपनी इन दोनों प्रौढ़ कृतियों में कालिदास ने शारीरिक आकर्षण के प्रथम आवेग को मंगलमय नहीं बताया है। काम जब पार्वती के सौन्दर्य को सम्बल बनाकर शिवजी के हृदय में क्षोभ उत्पन्न करना चाहता है तब उसे भस्म हो जाना पड़ता है। पार्वती जब अपने रूप से शिवजी को रिझाने में असमर्थ होकर तपस्या से उन्हें पाने का संकल्प करती हैं तभी कालिदास उन्हें उदात्त प्रेम की उपलब्धि की अधिकारिणी मानते हैं:— 'अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृश:।[5] किसी अन्य तरह वैसा प्रेम और वैसा पति कैसे पाया जा सकता है।

जिस प्रेम को तपस्या के द्वारा प्राप्त नहीं किया जाता, वह प्रेम मंगलमय नहीं होता। वह रूप भी मंगलमय नहीं होता जो तपस्या से परिशोधित न हो। कालिदास के मतानुसार वास्तविक उदात्त प्रिय अरूपहार्य[6] होता है, रूप के द्वारा उसे भुलाया नहीं जा सकता। पार्वती को इसीलिए लगा कि केवल आकर्षण के चाकचिक्य द्वारा शिव जैसे पति को प्राप्त करने का दावा करने वाला रूप वास्तविक प्रेम को प्राप्त करने का उपयुक्त उपकरण नहीं है। इस रूप को भी तप से पवित्र होना चाहिए। कालिदास का निर्णय है कि 'भावनिबन्धना रति' के लिए तप करना, तपना, ताप झेलना आवश्यक है। महादेवी वर्मा की पंक्तियाँ याद आ गयीं—

ताप बिना खंडों का मिल पाना अनहोना,
बिना अग्नि के जुड़ा न लोहा, माटी, सोना!
ले टूटे संकल्प-स्वप्न, उर-ज्वाला में पिघलो।[7]

जब लोहा, माटी, सोना जैसे जड़ पदार्थ भी बिना अग्नि-ताप के जुड़ नहीं सकते तब शिवजी के खंडों के रूप में विभाजित नर-नारी के जो जोड़े सच्चे प्रेम के तप रूपी ताप से अपने हृदयों को जोड़ नहीं पाते वे शरीर के स्तर पर जुड़ कर भी वास्तव में जुड़ नहीं पायेंगे। इस प्रेम तप के अन्तर्गत प्रिय को प्राप्त करने के लिए सर्वस्व समर्पण रूपी एकनिष्ठ तप भी है, विरहताप भी और भूल हो जाने पर उसके संशोधन के लिए आन्तरिक पश्चात्ताप भी। बिना सच्चे पश्चात्ताप के अगर शकुन्तला को प्राप्त कर लिया होता दुष्यन्त ने तो शकुन्तला की क्या स्थिति होती? अन्त:पुरों में एक क्षण के आकर्षण से अपने को धन्य मानने वाली ऐसी सुन्दरियों के जीवन का करुण अवसान हम बार-बार देखते रहे हैं, सुनते रहे हैं, जिनकी ओर राजा दूसरी बार आँख उठाकर भी नहीं देखता। क्या शकुन्तला की परिणति भी वैसी ही नहीं हो जा सकती थी? कालिदास ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि जो तथाकथित प्रेम कर्त्तव्य में बाधक बनता है वह स्वामी के द्वारा दंडित और ऋषि के द्वारा अभिशप्त होता है। यक्ष स्वर्णकमल लाना भूल जाये, शकुन्तला आतिथ्य-धर्म को विस्मृत करके केवल अपने प्रिय की स्मृति में लीन रहे, यह अपेक्षित नहीं है। यह तो आसक्ति है जो धिक्कृत की जानी चाहिए। इसीलिए इस आसक्ति के प्रेरक कामदेव को उसकी कुचेष्टा के कारण भगवान शिव दग्ध कर देते हैं। जब रूप का आकर्षण अपने को तप से पवित्र करता है, जब प्रेमी तप रूपी विरहताप या पश्चात्ताप से आसक्ति की समस्त श्यामता को दग्ध कर विशुद्ध कांचन के रूप में निखर उठता है तभी उसका प्रेम सार्थक होता है। पार्वती की तपस्या से रीझ कर शिव को भी कहना पड़ता है, हे अवनतांगि! तुम्हारे इस अपूर्व तप के कारण मैं आज से तुम्हारा मोल लिया दास हूँ—

अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दास:
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलो।[8]

इस दृष्टि से विरह की वास्तविक महिमा यही है कि वह तपाग्नि से आसक्ति को भस्म कर मंगलमय प्रेम को उद्‌बुद्ध करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस विचारक्रम में मैं कालिदास के निरूपण के अनुसार ही विरह को कुछ व्यापक अर्थ में ग्रहण कर रहा हूँ। सामान्यत: काव्यशास्त्र के अनुसार शृंगार के अन्तर्गत विप्रलंभ में ही विरह को सीमित किया जाता है। मृत्युजनित विच्छेद को शोक का हेतु मानकर उसका विवेचन करुण रस के अन्तर्गत किया जाता है। किन्तु कालिदास ने मृत्युजनित विच्छेद को विरह ही कहा है। इन्दुमती की आकस्मिक अकालमृत्यु से मर्माहत अज की उक्ति है।

शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्त्रिणम्।
इति तौ विरहान्तरसमौ कथमत्यन्तगता न मां दहे:।।[9]

चन्द्रमा को शर्वरी और चकवे को चकवी पुन: प्राप्त हो जाती है अत: वे उनके विरह को सह लेते हैं, किन्तु हे अत्यन्तगता इन्दुमती! तुम तो फिर मुझे नहीं मिलोगी, बताओ फिर विरहाग्नि मुझे भस्म क्यों न कर दे। यह अत्यन्तगता बहुत मार्मिक शब्द है। अत्यन्तगता... जो सदा के लिए चली गयी, जो फिर लौट कर नहीं आयेगी, जिसको पुन: नहीं पाया जा सकेगा। उस अत्यन्तगता के प्रति निवेदित प्रेम क्या मृत्यु के द्वारा खंडित हो जायेगा? भावनिबन्धना रति को क्या मृत्यु नष्ट कर सकती है? क्या प्रेम देह के माध्यम से उद्भूत ही नहीं, देहसीमित भी होता है? क्या प्रेम विदेह नहीं हो सकता? और यदि हो सकता है तो दैहिक मिलन की संभावना मृत्यु के द्वारा खंडित हो जाने पर उस विदेह प्रेम को विरह की अनुभूति क्यों नहीं हो सकती? क्यों उसे केवल शोकानुभूति ही कहना चाहिए? अपने प्राणों को प्रिय के चिर अनजान प्राणों से बांध देने के अनन्तर प्राणों की बढ़ती विरह व्यथा को वाणी देने के विवश प्रयास में सुमित्रानन्दन पन्त ने कहा है-

यह विदेह प्राणों का बन्धन,
अन्तर्ज्वाला से तपता तन,
मुग्ध हृदय सौन्दर्य ज्योति को,
दग्ध कामना करता अर्पण।
नहीं चाहता जो कुछ भी आदान प्राणों से।[10]

पन्त जी ने इस कविता में स्वीकारा है कि प्रेम की विदेह सत्ता भी हो सकती है। मैं मानता हूं कि कालिदास ने अज के विलाप में (और रति के विलाप में भी) जिस विरह को रेखांकित किया है, वह भावनिबन्धना रति की देहातीत विरह व्यंजना है। उसे प्रेम के अन्तर्गत ही मानना चाहिए, निरे शोक के अन्तर्गत नहीं। प्रेमी हृदय को अपने प्रेमपात्र की सत्ता का आभास प्रकृति के विविध रूपों में होता ही रहता है। अज को लगता है कि इन्दुमती उसे बहलाने के लिए कोयल को अपनी बोली, हंसिनी को अपनी चाल, हरिणी को अपनी चितवन और लता को अपनी लचक दे गयी है किन्तु प्रिया को अखंड... समग्र रूप में पाने के इच्छुक हृदय को इनमें उसकी आंशिक झलक पाकर संतोष कैसे हो सकता है, 'विरह तव मे गुरुव्यथं हृदयं न त्ववलम्बितुं क्षमा:।[11] करुण रस के इस प्रसंग में भी विरह की व्याप्ति कर कालिदास ने अपूर्व सहृदयता का प्रमाण दिया है। भावनिबन्धना रति के लिए यदि शरीर आरंभिक साधन मात्र है, उसके परवर्ती अस्तित्व की अनिवार्य शर्त नहीं तो शरीर का बन्धन टूट जाने पर भी भाव का बन्धन नहीं टूटेगा और अपने प्रेमपात्र के विरह का अनुभव करने का अधिकार प्रेमी का बना रहेगा, यह बात समझ में आने लायक है।

कालिदास ने एक और अद्भुत स्थापना की है। वे विरह को सौन्दर्य और प्रेम दोनों की कसौटी मानते हैं। विरह को प्रेम की कसौटी मानने वाले कालिदास ने बड़े भोले अन्दाज में कहा है:—

स्नेहानाहु: किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा: प्रेमराशी भवन्ति।[12]

हां, कहते हैं कुछ लोग कि विरह में स्नेह नष्ट हो जाता है, पर मालूम नहीं कैसे कहते हैं। शायद वे ही लोग कहते होंगे जिनकी दृष्टि शरीर-सीमित है। 'आँख से ओझल तो मन से ओझल' ऐसी बात जो कह सकता है वह वास्तविक प्रेमी है, कालिदास ऐसा नहीं मानते थे। वे तो मानते थे कि विरह में प्रेम और बढ़ जाता है। सीधी सी बात है प्रेमपात्र के सुलभ न होने के कारण उस पर जिसको उँड़ेला नहीं जा सकता वह तो संचित हो, होकर राशिभूत हो ही जायेगा। इस तरह कालिदास इस सत्य को रेखांकित करते हैं कि जो प्रेम विरह-काल में भी बढ़ता जाता है, वही सच्चा प्रेम है। अत: यह निर्विवाद है कि विरह ही प्रेम के खरे या खोटे होने की कसौटी है।

इससे एक कदम आगे बढ़कर कालिदास कुछ चौंकाने वाली बात कहते हैं कि विरह ही सौन्दर्य की भी कसौटी है। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है, 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता'[13] अर्थात् चारुता का... सौन्दर्य का फल यही है कि वह प्रिय के प्रति सौभाग्य को प्रदीप्त करे। आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बताया है कि सौभाग्य एक विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त शब्द है। सुभग का वह आन्तरिक वशीकरण धर्म जो प्रेमपात्र को आकृष्ट करने में समर्थ है, सौभाग्य है।[14] वह आन्तरिक वशीकरण धर्म वास्तव में किसी रूपवान या रूपवती में है कि नहीं, इसकी भी कसौटी विरह ही है। इसीलिए कालिदास ने कहा है, 'सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यंजयन्तीम्'[15] अर्थात् हे सुभग, तुम्हारे आन्तरिक वशीकरण धर्म को विरह की अवस्था ही व्यंजित करती है। जिसका प्रिय उसके विरह में उसके सौन्दर्य को स्मरण नहीं करता, उसके सौन्दर्य को अपनी कल्पना से रंजित नहीं करता, अपनी भावना से भावित कर आत्मीय नहीं बना लेता और इस तरह अपने वशीकृत हृदय का प्रमाण नहीं देता कालिदास की दृष्टि में उसका सौन्दर्य वास्तविक सौन्दर्य ही नहीं है। कालिदास की यक्षिणी हो या शकुन्तला, उर्वशी हो या इन्दुमती या कोई और नायिका उसके वास्तविक सौन्दर्य का आस्वादन उसका प्रेमी विरह में उसके रूप के रोमन्थन के द्वारा करता है। कालिदास की दृष्टि के अनुसार यदि प्रेम की शारीरिक प्रक्रिया रम्य है तो उसकी स्मृति रम्यतर है। यथार्थ जगत् में प्रेमकेलि के द्वारा जो कुछ किया वह तो सीमित है लेकिन उसकी कल्पनामिश्रित स्मृति की व्याप्ति तो असीम है। जब हम प्रिया के सौन्दर्य का बार-बार स्मरण करते हैं तो उसमें केवल प्रिया का वस्तुगत सौन्दर्य नहीं आता, उसमें अपनी समस्त कल्पना, भावना के साथ हम आते हैं। रवीन्द्रनाथ ने इस प्रक्रिया को उजागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए कहा है—

शुधु विधातार सृष्टि नह तुमि नारी!
पुरुष गड़ेछे तोरे सौन्दर्य संचारि,
आपन अन्तर हते!
पड़ेछे तोमार परे प्रदीप्त वासना,
अर्धेक मानवी तुमि अर्धेक कल्पना।[16]

अर्थात् हे सुन्दरी नारी, तुम केवल विधाता की सृष्टि नहीं हो। पुरुष ने अपने हृदय से सौन्दर्य का संचार कर तुम्हें गढ़ा है। तुम्हारे रूप को आलोकित करती रही है पुरुष की वासना की प्रदीप्त रश्मियां! तुम आधी मानवी हो और आधी कल्पना। इस आधी कल्पना को प्रेमी अपनी स्मृति के द्वारा रूपायित करता है। जिस प्रकार पुरुष अपनी कल्पना से अपनी प्रिया को संवारता है, उसी प्रकार नारी भी अपनी कल्पना से रंजित कर अपने प्रिय को अपनाती है। प्रेमी हृदय अपने प्रिय या अपनी प्रिया के सौन्दर्य को सौभाग्य-समलंकृत करके ही स्मरण करता है। विरह में तो प्रिय को पाने का एक ही उपाय है सम्पूर्ण सत्ता से उसका स्मरण। अत: यह विरहावस्था ही स्मरणीय प्रिय के सौन्दर्य की कसौटी बनकर उसको सम्यक् रूप से उरेहने का अवसर प्रदान करती है।

प्रेमी की स्मृति में प्रेमपात्र का जो सौन्दर्य निखरता है, उसका मर्म-मधुर चित्रण कालिदास ने बहुत रस लेकर किया है। जिस प्रकार कालिदास ऐसा चित्रण करते नहीं थकते, उसी प्रकार सहृदय पाठक भी उन जीवन्त भावपूर्ण चित्रों का रसास्वादन करते नहीं थकते। प्रस्तुत है कालिदास के साहित्य से उद्धृत विरहकातर प्रेमियों द्वारा अपने प्रेमपात्रों के कल्पनारंजित, स्मृत्याधारित कुछ मनोहारी चित्र!

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी,
मध्ये क्षामा चकित हरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभि:।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां,
या तत्र स्याद्युवति विषये सृष्टिराद्येव धातु:॥[17]

संयोग के समय की खिली कमलिनी की शोभा वाली प्रिया की छवि यक्ष के स्मृति पटल में उभरती है, छरहरा तन, छोटे-छोटे दांत, कुँदरू जैसे लाल ओठ, पतली कमर, चकित हरिणी के से नेत्र, गहरी नाभि, बड़े नितम्बों के कारण मन्द-मन्द चाल, कुच भार से नमित कलेवर... अर्थात् ब्रह्मा की सर्वोत्कृष्ट कलाकृति! किन्तु अब, अब वह कैसी लग रही होगी! यदि मैं विरह कातर चकवे के समान छटपटा रहा हूं तो वह भी विरहिणी चकवी के समान अकेली, अल्प भाषिणी, किसी किसी तरह कठिन विरह के दिनों को झेलते-झेलते पाले की मारी कमलिनी के सदृश निष्प्रभ हो गयी होगी क्योंकि वह मेरा दूसरा प्राण ही तो है। रोते-रोते सूजी आंखें, गर्म उसांसों से फीके पड़े ओठ, हाथ पर टिका कपोल, लम्बे बालों से ढंका आधा दिखने वाला उसका मुख... मेघ से अधढंके, धुंधले उदास चन्द्रमा जैसा लगता होगा। वह मलिन वसना मन बहलाने के लिए जब लगातार बहते आंसुओं से भींगी वीणा को पोंछ कर गोद में लेकर उसे बजा कर मेरे नाम का गीत गाने का प्रयास करती होगी तब मेरी स्मृति की कौंध के कारण उसके सधे हुए स्वरों का आरोह-अवरोह असंतुलित हो जाता होगा। दिन तो फिर भी किसी तरह कट जाता होगा लेकिन रात...। दिन में उसे कभी अकेली न छोड़ने वाली उसकी प्यारी सखियां भी जब रात में सो जाती होंगी तब भी वह धरती पर एक करवट पड़ी जागती होगी, हार के टूटे मोतियों के समान उसके आसपास बिखरे होंगे आंसू और वह बढ़े हुए नखों वाले हाथ से अपनी इकहरी वेणी के रुखे, उलझे बालों को अपने गालों पर से बार-बार हटाती होगी। दीवाल की जालियों से छनकर आने वाली चन्द्र किरणों को पूर्व अनुभवों के अनुरूप अमृत शीतल समझ कर अपना मुख उनकी ओर वह ज्यों ही करती होगी त्यों ही उनकी दाहकता से झुलस जाने के कारण अपनी आंसू भरी आंखों को पलकों से ढंक लेती होगी मानो वह मेघ घिरे दिन की स्थल कमलिनी हो जो न खिल सकती हो, न मुंद सकती हो! और भी कितनी कितनी कल्पनाएं करता है अपनी प्रिया की विरह कातरा स्थिति के बारे में यक्ष का प्रेमी हृदय! उसे लगता है कि वह अपने मन को टटोल-टटोल कर अपनी प्रिया के मन की बात को जान सकता है... दोनों का मन एक ही जो हो गया है। तभी तो प्रेमी कहता है, 'अपने मन से जान लो मेरे मन की बात!' इसी विश्वास की कलात्मक अभिव्यंजना कालिदास ने उत्तर मेघ के अनेकानेक छन्दों में की है।

विलक्षण है विरही यक्ष का प्रिया के नाम संदेश! पहले प्रिया को आश्वस्त करने के लिए वह अपनी कुशल कहकर प्रिया की कुशलता जानना चाहता है। कैसी कुशल है भला यह! बैरी ब्रह्मा रोके हुआ है मिलन का मार्ग, अत: अभी मिलना तो संभव नहीं, किन्तु अपनी अंगकृशता से तुम्हारी अंगकृशता का, अपने प्रगाढ़ विरह ताप से तुम्हारे तदनुरूप विरह ताप का, अपने निरन्तर अश्रु प्रवाह से तुम्हारे अश्रु प्रवाह का, अपनी मिलनोत्कंठा से तुम्हारी उत्कंठा का, अपनी जलती हुई लम्बी-लम्बी सांसों से तुम्हारी उसांसो का ठीक-ठीक अनुमान तो कर ही रहा हूं। यह भी मत समझना कि तुम दूर हो तो मुझे तुम्हारा आभास नहीं होता। नहीं, नहीं, आभास तो होता रहता है। प्रियंगुलता में तुम्हारे अंगों का, चकित हरिणी की आंखों में तुम्हारी चितवन का, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख का, मयूरपिच्छ में तुम्हारी केश राशि का, नदी की लघु लोल लहरियों में तुम्हारे भ्रूविलास का आभास तो होता रहता है, किन्तु समग्रता में तो कोई भी तुम्हारे सदृश नहीं है। कितना मर्मस्पर्शी छन्द है—

श्यामास्वंगं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं,
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्,
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति॥[18]

प्रकृति के विविध उपकरण प्रिया के अंगों की झलकें भले दे लें किन्तु अपनी समग्रता में तो वह अद्वितीय ही है, कालिदास को इसका पक्का विश्वास था। उनके द्वारा चित्रित विरही प्रेमी बार-बार इस सत्य को दुहराते हैं। इन्दुमती के शोक में अज की उक्ति है :-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलमन्यभृतासु भाषितं, कलहंसीषु मदालसं गतम्।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूतलतासु विभ्रमा: ।।[19]

अर्थात् हे इन्दुमती ! तुम्हारी मीठी बोली कोयलों को, तुम्हारी मन्द-मन्द चाल कल हंसिनियों को, तुम्हारी चंचल चितवन हरिणियों को और तुम्हारा प्रीति द्योतक हाव-भाव वायुदोलित लताओं को प्राप्त हो गया। इसी तरह पुरुरवा को भ्रम हुआ था कि कहीं उसकी क्रोध शीला प्रिया ही तो नदी नहीं बन गयी है क्योंकि इसकी लहरें उसकी चढ़ी हुई भौहों के समान, व्याकुल पक्षियों की पंक्ति उसकी करधनी के समान और इसकी फेन उसकी ढीली पड़ी, खींची जाती हुई साड़ी के समान लग रही हैं।[20]

यक्ष को लगता है कि प्रिया के विरह में भी मैं सकुशल हूं, यह सुनकर तो प्रिया को अच्छा नहीं लगा होगा, उसे क्रोध ही आया होगा और वह रुठ गयी होगी तो अपनी पीड़ा का निवेदन करते हुए कहता है कि जब मैं प्रस्तर शिला पर गेरू से तुम्हारी प्रणय कुपिता... रुठी हुई छवि को अंकित कर तुम्हें मनाने के लिए अपने को तुम्हारे चरणों में गिरा हुआ चित्रित करना चाहता हूं तभी आंसू इस प्रकार उमड़ते हैं कि कुछ देख ही नहीं पाता। देखो, क्रूर काल को चित्र में भी हमारा मिलना नहीं सुहाता।

जब कल्पित अपराध से रुठी हुई प्रिया की भावना इतना विगलित कर देती है तब वास्तविक अपराध की स्मृति हृदय को कितना पीड़ित कर सकती है। इसका निरुपण कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में बहुत विदग्धतापूर्वक किया है। अपराध बोध की ज्वाला से दग्ध हो रहा दुष्यन्त अतीत के मर्मबेधी क्षणों को स्मरण के माध्यम से पुन: जीने की प्रक्रिया में कह उठता है, जब मैंने शकुन्तला का प्रत्याख्यान कर दिया था और महर्षि कण्व के शिष्यों ने उसे डाँटकर यहीं रहने को कहा था तब उसने आंखों में आंसू भर कर जिस दृष्टि से मुझ क्रूर को देखा था, वह दृष्टि विषाक्त शल्य की तरह मुझे दग्ध कर रही है—

पुनर्दृष्टिं वाष्पप्रसर कलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्रत्सविषमिव शल्यं दहति माम्। [21]

उसने मुझे अपना विश्वास दिया था। मैंने उसके विश्वास को खंडित किया। विश्वास खंडन के चरम क्षणों में जिस दृष्टि से उसने मुझे देखा था, उसमें जो वेदना थी, आक्रोश की जो ज्वाला थी वह मेरे हृदय को अब जला रही है। हाय, मैंने क्यों नहीं उस समय उसको पहचाना। प्रमाद का यह शल्य रह रहकर उसके हृदय में चुभता ही रहता है। यह आन्तरिक पश्चात्ताप उसको इस योग्य बनाता है, वह पात्रता देता है कि वह शकुन्तला को पुन: प्राप्त कर सके और शकुन्तला के सौन्दर्य को, उसके समर्पण को सच्चा मान दे सके।

इसी मन:स्थिति में वह शकुन्तला का चित्र बनाता है। चित्र बनाते समय सात्त्विक भाव स्वेद के कारण उसकी उँगलियां पसीज जाती हैं जिससे चित्र कोरों पर उसकी उँगलियों के काले धब्बे पड़ जाते हैं। भवावेश के कारण उसकी आँखों से आँसू चित्रित शकुन्तला के गाल पर टपक पड़ते हैं। सानुमती और विदूषक को जो चित्र बिल्कुल जीवन्त लगता है, दुष्यन्त की भावभरी आँखों में वह अधूरा है, क्योंकि परिवेश को मूर्त करने वाली बहुत सी बातें अभी तक उरेही नहीं गयी हैं। शकुन्तला चित्र में भी सजीव तभी लगेगी जब उसकी पूरी पृष्ठभूमि उभरेगी। दुष्यन्त को लगता है इसके लिए तो मालिनी नदी अंकित करनी होगी जिसके रेतीले तट पर हंस के जोड़े हों, दोनों ओर हिमालय की तलहटी में हरिण बैठे हों, एक ऐसा पेड़ हो जिस पर वल्कल टंगे हों और जिसके नीचे एक हरिणी अपनी बाईं आँख कृष्ण मृग के सींग से रगड़ कर खुजला रही हो—

कार्या सैकतलीन हंस मिथुना स्रोतोवहा मालिनी,
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरो: पावना: ।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यध:
शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ।।[22]

इसमें कृष्ण मृग के सींग से हरिणी का अपनी बाईं आँख खुजलाना अत्यंत मार्मिक है। दुष्यन्त संकेतित करना चाहता है कि जिस तपोवन में इतने घने विश्वास का वातावरण था कि सामान्य हरिणी तक को यह पक्का बोध था कि जब मैं अपनी आँख अपने प्रिय के सींग से लगा दूंगी और खुजली मिटाने लगूंगी, उसका सींग हिले-डुलेगा नहीं, मेरी आँख घायल नहीं होगी। उस चरम विश्वास की भूमि पर मैंने शकुन्तला के साथ प्रवंचना की, धिक्कार है मुझे! विरह की पीड़ा के साथ-साथ अपराध बोध की जो मर्मन्तुद वेदना दुष्यन्त को झुलसाती है, वही उसके काम को दग्ध कर प्रेम में रूपान्तरित करती है। राज सुलभ विलास भाव भस्म हो जाता है पश्चात्ताप की उस आग में और तप्त कांचन की तरह शकुन्तला के प्रति उसका सच्चा अनुराग निखर उठता है।

विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी के वियोग में पुरुरवा का जो विलाप है, उन्मत्त विलाप, वास्तव में वही विक्रमोर्वशीयम् को उच्चकोटि के नाटक का गौरव प्रदान करता है। उस विलाप के माध्यम से कालिदास मानव हृदय को प्रकृति के साथ एक करते हैं। उन्होंने बार-बार निर्दिष्ट किया है कि प्रकृति जड़ नहीं चेतन है। शकुन्तला पति गृह जाने लगती है तो तपोवन की सारी प्रकृति उसको आशीर्वाद देती है, उसको अनेकानेक उपहार देती है और उसके आसन्न विरह के बोध से कातर होकर आंसू बहाती है। उसी चेतन प्रकृति से पुरुरवा बार-बार अपनी प्रिया उर्वशी का पता पूछता है। हां, कालिदास को भी ज्ञात है कि बहुत से ऐसे पंडित हैं, जो प्रकृति को चेतन नहीं मानते। उन्हीं को सन्तुष्ट करने के लिए उन्होंने 'मेघदूत' में लिख दिया है :-

कामार्त्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु[23] अर्थात् कामार्त्त कहां भेदकर पाते हैं चेतन और अचेतन में। मेघ होगा स्थूल लौकिक दृष्टि से धूम, ज्योति, सलिल और मरुत का सम्पुञ्ज किन्तु प्रेमी उसमें अपनी चेतना का आरोप कर उसे चेतनवत् मानकर उसके द्वारा अपनी प्रिया को सन्देश भेज ही सकता है। यह रम्य कवि कल्पना आज भी सहृदय मन को मोहती है। कठिन बौद्धिकों को तब भी यह बचकानी लगती होगी, आज भी लग सकती है।

किन्तु पुरुरवा तो यक्ष को भी पार कर जाता है।अपनी प्रखर विरह-आर्त्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में वह एक-एक तरु से, लता से, कोयल से, हंस से, गजराज से, निर्झर से, नदी से अपनी प्रिया के बारे में पूछता फिरता है। जरूर उन्होंने वाल्मीकि रामायण का आधार लिया होगा। बाद में तुलसी के राम भी लता, तरु-पांती से, खग, मृग मधुकर श्रेणी से मृगनयनी सीता का सन्धान पूछते चित्रित किये गये हैं। भारतीय चित सहज ही स्वीकार कर लेता है इस मन:स्थिति की कारुणिकता को और एक दृष्टि से इसकी संगति को भी। यदि हम एक ही चेतना को विश्व ब्रह्माण्ड में प्रसारित मानते हैं, तो फिर ये तरुलता, खग-मृग क्यों नहीं व्याकुल प्रेमी हृदय की पीड़ा के प्रति सहानुभूति सम्पन्न हो सकते, बोल न पाने की विवशता दूसरी बात है।

आह, कैसी आशुकोपी थी पुरुरवा की प्रिया उर्वशी। आखिर क्या अपराध था पुरुरवा का? यही कि उसने विद्याधर कन्या उदयवती को एक नजर देख लिया था। 'नजर आखिर नजर है, बेइरादा उठ गयी होगी'! पर मानिनी उर्वशी को यह असह्य था। राजा के अनुनय-विनय को ठुकरा कर क्रोधवश कार्त्तिकेय के विधान का उल्लंघन कर वह कुमारवन में प्रविष्ट हुई और शापवश लता बन गयी। अपने अपराध का इतना कठोर दंड पाकर पुरुरवा उद्भ्रान्त हो गया। कालिदास ने नेपथ्य गीतों के माध्यम से पुरुरवा की मन:स्थितियों को संकेतित करने की अपूर्व कुशलता दिखायी है। प्रिया विरह की यंत्रणा से उन्माद ग्रस्त गजराज की भांति पुरुरवा चतुर्थ अंक में मंच पर आता है। उसका सारा व्यवहार उन्मत्तवत् है। उसकी हृदयद्रावी विरह पीड़ा अपनी प्रिया का साहचर्य पुन: प्राप्त करने की आतुरता में समझ ही नहीं पाती है कि वह प्रिया का पता किससे पूछे और किससे न पूछे। कभी काले बादलों में चमकती बिजली और उससे बरसती वारिधारा को देखकर उसे भ्रम होता है कि कोई राक्षस बाण बरसाते हुए उसकी प्रिया को हर कर ले जा रहा है और कभी कन्दली के जल भरे लाल-लाल फूल उसे अपनी प्रिया के क्रोधारुण, अश्रुसिक्त नेत्रों का स्मरण करा देते हैं। कालिदास ने इस पूरे विरह प्रकरण के द्वारा पुरुष हृदय के आवेगपूर्ण, आकुल-व्याकुल, उफनते हुए उन्मथित प्रेम को अंकित किया है।

पुरुरवा के विरह में यदि भादों की पगलायी नदी का हर-हराता प्रखर प्रवेग है तो अज के विरह में लोहे को पिघला देने वाले घनीभूत ताप का अन्तर्दाह। नारद जी की वीणा से खिसक कर गिरी माला के आघात से जब इन्दुमती की मृत्यु हो गयी तब अपनी सहज धीरता का त्याग कर अज क्रन्दन कर उठे। न केवल अज का विलाप, उसका परवर्त्ती आचरण भी इन्दुमती के प्रति उसकी 'भावनिबन्धना रति' का मार्मिक प्रमाण है। उसे लगता है कि यह माला ऐसी क्रूर बिजली की तरह गिरी जिसने तरु को तो तिलतिल कर दहने के लिए अछूता छोड़ दिया, किन्तु उससे लिपटी हुई लता को जला दिया। निर्जीव इन्दुमती की फूलों से गुंथी, भौरों के समान काली लटें जब वायु वेग से हिल उठती थीं तो अज को लगता था कि शायद वह जी उठे किन्तु वह अप्रतिबोधशायिनी प्रिया तो सदा के लिए जा चुकी थी। जो कभी न लौटने वाली हो, वही तो अत्यन्तगता कहलाती है। हां, वह अपने बहुत से गुण यहां की प्रकृति को दान कर गयी है किन्तु समग्र की विरह व्यथा क्या अंशों के सहारे झेली जा सकती है! अज को ठीक ही लगता है कि केवल वही नहीं और भी बहुतेरे इन्दुमती के इस अप्रत्याशित भाव से चले जाने से तिलमिला उठे हैं। वह उलाहना देता हुआ सा कह उठता है, प्रिये इन्दुमती! तुम्हीं ने तो इस आम्र वृक्ष के साथ उस प्रियंगुलता के विवाह का संकल्प किया था, वे अब भी प्रतीक्षारत हैं। तुम्हारे कोमल पदाघात से फूल उठने वाला अशोक वृक्ष सशोक होकर रो रहा है, यह अधगुंथी मौलसिरी की माला पूरी होना चाहती है, तुम्हारे सुख-दु:ख की सहचरी सखियां, प्रतिपदा के चन्द्रमा के सदृशवर्धनशील तुम्हारा यह पुत्र और मैं तुम्हारा एकनिष्ठ प्रेमी हम सब तुम्हारे इस निष्ठुर प्रयाण से मर्माहत हैं। पर मृत्यु भी कभी किसी का अनुनय-विनय सुनती है। अज कह उठता है, इस निष्करुण मृत्यु ने इन्दुमती के बहाने मेरा सब कुछ हर लिया क्योंकि वही तो मेरी गृहिणी थी, सचिव थी, ऐकान्तिक सखी थी, ललित कलाओं में मेरी प्रिय शिष्या थी! उसके चले जाने से मेरा धैर्य छूट गया, प्रीति चुक गयी, गान वाद्य निरस्त हो गये, ऋतुएं उत्सवहीन हो गयी, आभरण निष्प्रयोजन हो गये, शैया सूनी हो गयी! प्रिय को ही सर्वस्व मानने वाले प्रामाणिक प्रेम की विरहानुभूति को झलकाने वाले ये श्लोक आज भी विरह की कसौटी बने हुए हैं—

धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेयमृतुर्निरुत्सव:।
गतमाभरणप्रयोजनं परिशून्यं शयनीयमद्य मे।।
गृहिणी, सचिव:, सखी मिथ:, प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्।।[24]

स्वाभाविक ही था कि अज के विलाप से द्रवित होकर आसपास के वृक्ष भी अपनी शाखाओं से रस स्राव कर रोने लगे। कालिदास के साहित्य में प्रकृति सर्वत्र मानव की संवेदनशील सहचरी के रूप में ही अंकित हुई है। इन्दुमती का क्रियाकर्म कर जब अज नगर में प्रविष्ट हुए तो प्रात:कालीन निष्प्रभ चन्द्रमा के समान उनके वियोग विधुर मुख को देखकर पौरवधुओं के नेत्रों से आँसुओं का प्रवाह फूट पड़ा।

गुरु वशिष्ठ के सान्त्वनादायी ज्ञान सन्देश के समक्ष अज नतमस्तक तो रहे किन्तु उसको पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाये। कालिदास ने लिखा है कि इस उपदेश को वहन करने वाले वशिष्ठ जी के शिष्य को अज ने इस प्रकार विदा किया मानो अपने शोकपूर्ण हृदय में स्थानाभाव के कारण उस उपदेश को ही लौटा दिया। पर उनका विशुद्ध प्रेम उनके कर्त्तव्य में बाधक नहीं बना। आठ वर्षों तक वे अपने किशोर पुत्र दशरथ के युवा होने की प्रतीक्षा करते रहे, उसको राजधर्म की शिक्षा देते रहे। प्रिया के विरह शोक की बर्छी से विद्ध हृदय लिये ये आठ वर्ष उन्होंने व्यक्तिगत जीवन में काटे प्रिया इन्दुमती का चित्र देख देखकर, स्वप्नों में उसका क्षणिक समागम लाभकर! तदनन्तर पुत्र को सिंहासन पर बैठाकर अनशन कर परलोक में प्रिया से मिलने की कामना लिये अज ने शरीर त्याग दिया। प्रेम और कर्त्तव्य दोनों के निर्वाह का ऐसा मर्मस्पर्शी उदाहरण विश्व साहित्य में विरल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारी हृदय की विरह-वेदना भी कालिदास ने बहुत सजग, बहुत संवेदनशील लेखनी से अंकित की है। वैसे तो नर और नारी दोनों के हृदयों में प्रेम का प्रस्फुटन बहुत सी बातों में समान ही होता है फिर भी दोनों में शीलगत कुछ अन्तर होता ही है। कालिदास ने पुरुष की तुलना में नारी का प्रेम अधिक मर्यादित और निष्ठायुक्त चित्रित किया है। तदनुरूप उसके विरह वर्णन में भी अधिक गंभीरता दृष्टिगोचर होती है। कालिदास ने दुष्यन्त, पुरुरवा के विरह वर्णन में उन्हें अपने अपराध के प्रति पश्चात्ताप परायण भी अंकित किया है। यह निष्ठा हीनता जन्य अपराध बोध कालिदास के किसी नारी पात्र के विरह वर्णन में नहीं है। हां, अपने सौन्दर्य के प्रति अभिमान का तथा प्रेमगर्विता की भूमिका में पति पर किये गये प्रणय शासन का अपराध बोध जरूर उनकी विरहकातर उक्तियों को और मर्मस्पर्शिता प्रदान करता है।

पार्वती को अपने सौन्दर्य-सामर्थ्य का उचित गौरव बोध था। जब उन्होंने देखा कि उनका सौन्दर्य कामदेव के पूरे सहयोग के बावजूद शिवजी के हृदय पर बहुत हल्का प्रभाव ही डाल सका और उससे क्षुब्ध हुए शिवजी ने कामदेव को भस्म ही कर दिया, तब उन्होंने अपने सौन्दर्य को धिक्कारा और यह स्वीकार कर लिया कि महादेव का प्रेम केवल सौन्दर्य के बल पर नहीं पाया जा सकता... वह वस्तुत: 'अरूपहार्य' है। सच तो यह है कि उन्हें भी इस दुर्घटना के बाद ही प्रेम के और गहरे पक्ष का अनुभव हुआ। कालिदास के अनुसार शिवजी के ऊपर चलाया गया कामदेव का बाण उनकी हुंकार से डर कर लौटा और कामदेव के भस्म हो जाने के बावजूद वह पार्वती के हृदय को क्षत-विक्षत कर गया। उससे धधकी विरह ज्वाला को शमित करने में ललाट एवं मस्तक पर चन्दन का प्रगाढ़ प्रलेप एवं तुषाराच्छादित शिला पर शयन भी असमर्थ सिद्ध हुए। अपने रूंधे हुए गले से जब पार्वती शिव चरित्र के गीत गाने लगती तब उस करुण स्वरलहरी को सुनकर वनवासिनी किन्नर राजकन्याएं रो पड़ती थीं। शिव के ध्यान में डूबी पार्वती सपने भी शिवजी के ही देखा करती। मुश्किल से एक क्षण के लिए आंख लगने पर स्वप्न में साथ छोड़कर जाते हुए शिवजी को देखकर पार्वती चौंककर उठती और कहां जा रहे हो नीलकंठ! कहकर उनके कंठ में अपनी बाहुएं डालकर उन्हें रोकने का प्रयास करती। अपने ही बनाये हुए शंकर के चित्र को वास्तविक मानकर उन्हें उपालंभ देने लगती कि विद्वज्जन तो तुम्हें सर्वगत सर्वज्ञ कहते हैं तब फिर कैसे तुम अपने प्रेम मे डूबी इस जन की पीड़ा को नहीं जान पाते! अद्भुत हैं ये दोनों श्लोक :-

त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत।
क्व नीलकण्ठ ब्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पित बाहुबन्धना।।
यदा बुधै: सर्वगतस्त्वमुच्यसे न वेत्सि भावस्थमिमं कथं जनम्।
इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखर: ।।[25]

इसी प्रखर विरह वेदना ने पार्वती को प्रेरणा दी कि जिसे रूप से नहीं रिझाया जा सका उसे सर्व-समर्पण-परक तपस्या से प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। पार्वती की कठिन तपस्या और उसकी सहज एकनिष्ठा के समक्ष शिवजी को भी झुकना पड़ा। पार्वती का प्रेम सार्थक हुआ। उसे महादेव के सदृश पति मिला और उनका लोकोत्तर दिव्य प्रेम भी।

शिवजी के क्रोधानल से कामदेव को भस्म होता देखकर रति मूर्छित हो गयी थी। जब वह सचेत हुई तब तक महादेव अन्तर्धान हो चुके थे और पार्वती को उसके पिता हिमालय ले जा चुके थे। सद्य: विधवा हुई रति अपने पति त्रिभुवन जयी पति, कमनीय कलेवर कामदेव के स्थान पर पुरुषाकृति राख की ढेर देखकर विह्वल हो धरती पर लोटने लगी, उसके बाल बिखर गये, उसका कातर क्रन्दन सुनकर मानो वनभूमि भी रोने लगी। उसे लगा कि उसका हृदय अत्यन्त कठोर है, प्रियतम की यह स्थिति देखकर भी अभी तक वह विदीर्ण नहीं हुआ। वह कामदेव को सम्बोधित करते हुए कहने लगी कि मैंने तो तुम्हें अपने प्राण सौंप दिये थे, फिर तुम सेतुबन्ध को तोड़कर जल प्रवाह जिस तरह कमलिनी को पीछे छोड़कर त्वरित बह जाता है, उसी तरह मुझे छोड़कर कहां चले गये। तुम तो कहा करते थे कि मैं तुम्हारे हृदय में बसती हूं, लगता है वह केवल छल था, उपचार मात्र था। नहीं तो बताओ तुम तो जलकर अंगहीन... अनंग हो गये और मैं अभागिन ज्यों की त्यों रह गयी। यदि मैं सचमुच तुम्हारे हृदय में बसी होती तो तुम्हारे साथ जलकर मुझे भी राख हो जाना चाहिए था। बड़ी पीड़ा से भरी उक्ति है यह, जो प्रियतम के कथन की लाक्षणिकता को अभिधा में बदल देना चाहती है—

हृदये वससीति मत्प्रियं, यदवोचस्तदवैमि कैतवम्।
उपचारपदं न चेदिदं, त्वमनङ्ग: कथमक्षता रति: ।।[26]

स्मृति हमारे हृदय में छिपे हुए भावों को कैसे उजागर करती है, इसका एक अत्यन्त प्रभविष्णु उदाहरण प्रस्तुत किया है कालिदास ने रति के एक कथन के द्वारा! जिसके प्रति किसी का सहज प्रेम होता है, वह दूसरे काम करता हुआ भी बीच-बीच में अनायास ही उसे देख लेता है। यह स्वाभाविक प्रक्रिया बिना कुछ कहे हृदय के प्रेम को व्यक्त कर देती है। रति को याद आता है कि कामदेव जब गोद में धनुष रखकर बसन्त से हंस-हंसकर बातें करता रहता था, अपने बाण सीधे करता रहता था तब बीच-बीच में नयनों की कोरों से मुझे देख भी लिया करता था—

ऋजुतां नयत: स्मरामि ते शरमुत्सङ्गनिषण्णधन्वन:।
मधुना सह सस्मितां कथां नयनोपान्तविलोकितं च तत्।।[27]

तुलसी ने वन गमन के समय राम-सीता के प्रेम की एक ऐसी ही झलक दी है। ग्राम वधुएँ लक्ष्य करती हैं कि वनमार्ग में जाते समय राम स्वाभाविक रूप से बार-बार सीता की ओर देख लेते हैं। वे राम के इस सहज स्नेहपूर्ण आचरण पर मुग्ध होती हैं और जानते हुए भी कि उनसे सीता का क्या सम्बन्ध है इस सृष्टि के लिए पूछ ही तो लेती हैं :-

सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछत ग्रामबधू सिय सों, कहो सांवरे से सखि रावरे को हैं ?[28]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह तो सहज प्रेम का अनजाना, प्रयास-निरपेक्ष व्यवहार है, जब-तब अन्य कार्यों के बीच भी प्रिय को स्वाभाविक रूप से देख लेना एवं उसके माध्यम से उस तक अपना प्रेम पहुंचा देना! इसकी मधुरता को प्रेमी हृदय भलीभांति जानते हैं। इसीलिए रति ने अपने प्रिय के इस व्यवहार को याद रखा है। उस प्राणशोषी विरह में भी अपने प्रति कामदेव के सच्चे प्रेम को व्यक्त करने के लिए वह इस मधुर प्रक्रिया का उल्लेख करती है।

अपने प्रियतम के सखा वसन्त का स्मरण आते ही रति को इस कठिन समय में उसकी अनुपस्थिति खलती है और वह व्याकुल होकर कह उठती है, कहीं वसन्त भी तो महादेव की क्रोधाग्नि से भस्म नहीं हो गया। यह सुनते ही वसन्त उसे आश्वासन देने के लिए वहां उपस्थित होता है। उसे देखते ही रति का शोक और भड़क उठता है। वह छाती पीट-पीटकर, फूट-फूटकर, फफक-फफक कर रोने लगती है। कालिदास की सटीक टिप्पणी है, दु:ख में अपने स्वजन को देखते ही दु:ख उसी प्रकार वेग से निकलने लगता है मानो देर से रुकी हुई जलराशि को बाहर निकलने के लिए खुला द्वार मिल गया हो—

तमवेक्ष्य सरोद सा भृशं स्तनसम्बाधमुरो जघान च।
स्वजनस्य हि दु:खमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते।।[29]

इस मनोवैज्ञानिक उक्ति की सत्यता स्वत: प्रमाणित है। आहत हृदय जब अपने किसी सच्चे स्वजन का सान्निध्य पाता है तो अपनी पीड़ा उसके साथ बांट लेना चाहता है।

क्या कालिदास ने भी अपनी विरह वेदना अपने श्रोताओं-पाठकों के साथ बांट लेनी चाही थी? कौन जाने! पर यह तो निर्विवाद है ही कि कालिदास ने विरह वेदना के मार्मिक अनुभवों की जो कलादीप्त, समर्थ व्यंजना की है, वह सम्पूर्ण मानव जाति की अमूल्यनिधि है। मिलनजन्य सुख कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि दूसरे को ईर्ष्यान्वित करे किन्तु विरहजन्य दु:ख? वह यदि सच्चा है और उसे यदि सही ढंग से व्यक्त किया गया है तो कभी ऐसा नहीं होता कि दूसरे के हृदय को उर्वर न कर दे। महादेवी वर्मा ने ठीक ही लिखा है—

दुख के पद छू बहते झर-झर,
कण-कण से आंसू के निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु, उर्वर,
लघु मानस में वह असीम जग को आमंत्रित कर लाता।[30]

कालिदास ने अपने लघु मानस में असीम जग को आमंत्रित किया है कि हम सब उनकी अनुभूत विरह वेदना से गुजर कर अपनी सौन्दर्य चेतना को, अपनी प्रेम-चेतना को पवित्र करें, उन्हें तप के द्वारा शुद्ध करें और वास्तविक प्रेमी होने की साधना में प्रवृत्त हों।

सन्दर्भ - निर्देश

1 नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं खंड-2 पृ. 25
2 रघुवंशम् 8/52
3 वही 1/8
4 मेघदूतम् पूर्वमेघ: 27
5 कुमारसंभवम् 5/2
6 वही 5/53
7 महादेवी साहित्य खंड-3 पृ. 464
8 कुमारसंभवम् 5/86
9 रघुवंशम् 8/56
10 आधुनिक कवि (2) सुमित्रानन्द पन्त, कवि की हस्तलिपि
11 रघुवंशम् 8/60
12 मेघदूतम् उत्तर मेघ: 55
13 कुमारसंभवम् 5/1
14 कालिदास की लालित्य योजना पृ. 69
15 मेघदूतम् पूर्व मेघ: 31
16 संचयिता-मानसी पृ. 285
17 मेघदूतम् उत्तर मेघ: 22
18 वही 46
19 रघुवंशम् 8/59
20 विक्रमोर्वशीयम् 4/52
21 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6/9
22 वही 6/17
23 मेघदूतम् पूर्व मेघ: 5
24 रघुवंशम् 8/66-67
25 कुमारसंभवम् 5/57-58
26 वही 4/9
27 वही 4/23
28 कवितावली 2/21
29 कुमारसंभवम् 4/26
30 आधुनिक कवि (1) महादेवी वर्मा गीत 17

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org